

श्रीमद्वैष्णवद्वैतसिद्धान्तप्रतिष्ठापनाचार्य-श्रीमन्मध्वाचार्यपीठाधिष्ठितानां श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यत्वाद्यनेकगुणगणालंकृतानांश्रीमदुत्तरादिमठाधीशानां श्रीमद्वैदिकसिद्धान्तप्रचारणबद्धपरिकराणां श्री श्री १०८ श्रीमत्सत्यध्यानतीर्थमुनींद्राणां मुखकमलनिस्सृतवाक्तरङ्गिणीलहरीलेशरूपम्—

अद्वैतमतविमर्शमालायाः-

द्वितीयं पुष्पम् ।

—:o:—

संग्राहकः—

पण्डित नारायणाचार्यः ।



प्रकाशकः—

श्रीमन्मध्वसिद्धान्ताभिवृद्धिकारिणी सभा

काशी ।

बाबूनन्दनप्रसाद द्वारा सत्यनाम प्रेस, काशी में मुद्रित ।

श्रीसत्यमेव जयति नानृतम्।

अवश्य ध्यान देकर पढ़िये

अवतरणिका पर विचार।

श्रीहाराणचन्द्रभट्टाचार्यशास्त्रीजीने 'अद्वैतमतविमर्शखण्डन' नाम देकर अपने लिखे हुए पुस्तकका आरंभ करते हुए अवतरणिकामें लिखा है कि, 'अद्वैतमतविमर्श' ग्रन्थमें श्रीशंकराचार्य तथा उनके सिद्धांत पर तीव्र आक्षेप किया गया, इस प्रकार सांप्रदायिक विवाद असामयिक तथा अनुचित है। परन्तु शास्त्रीजीने 'अद्वैतमतविमर्श' का कुछ भी अभिप्राय न समझ कर ऐसा लिखा है, यह प्रतीत होता है। क्योंकि अद्वैतमतविमर्श ग्रन्थके प्रकाशनका अभिप्राय यह है कि— जैसे भगवान्‌ने असुर लोगोंके मोहनार्थ बुद्धरूप धारण कर बौद्धमतका उपदेश किया था उसी प्रकार शंकरावेशावतार श्रीशंकराचार्यने भी असुरोंके मोहनार्थ अवैदिक बौद्धमतको ही वैदिक अद्वैतमत नामसे प्रसिद्ध किया। उसमें 'न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं न मंत्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः। न मेजातिभेदो' (निर्वाणषट्क) न माता पिता वा, न देवा न लोकाः, न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवंति। न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्माः, न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा। न च त्वं न चाहं न चायं प्रपंचः, (दश श्लोकी) 'तस्माद्विद्याकार्यत्वात्सर्वकर्मणां तत्साधनानांच यज्ञोपवीतादीनां परमार्थदर्शननिष्ठेन त्यागः कर्त्तव्यः। (उपदेशसाहस्री)' इत्यादि वाक्योंसे पुण्य नहीं है, पाप नहीं है, मंत्र नहीं है, जातिभेद नहीं है, माता नहीं पिता नहीं, देव नहीं, स्वर्गादिपरलोक नहीं, यह लोक नहीं, वेद नहीं, यज्ञ नहीं, गंगादि तीर्थ नहीं, ब्राह्मणादिवर्ण नहीं है, ब्रह्मचर्यादि आश्रम नहीं है, वर्णाश्रमोंके धर्म

नहीं है, शास्त्र नहीं है, शास्ता नहीं है, गुरु नहीं है, शिक्षा नहीं है, शिष्य नहीं है, तुम नहीं हो, हम नहीं हैं, सांख्यमत नहीं है, शैवमत नहीं है, पंचरात्र नहीं है, पाशुपत नहीं है, सौरमत नहीं है, गाणपत्य नहीं है, शाक्तमत नहीं है, मीमांसकादिमत नहीं है, बहुत क्या कहें, ये समस्त पूर्व न थे न अभी हैं न आगे होंगे। इस प्रकार तीनों कालोंमें भी न रहने वाला झूठा है जो कुछ दीखता है वह भ्रममात्र है, इसलिये सब धर्मोंका तथा उसके साधन यज्ञोपवीत आदिका त्याग करना चाहिये। ऐसा बताया है। फिर जिस प्रकार दैवीसंपत्तिमान् सज्जनोंको भयसे बचानेके लिये भगवान्‌ने वेदव्यासरूपसे ब्रह्मसूत्रका निर्माण करके बुद्धरूपसे स्वयं किये हुए बौद्धमतका खण्डन किया, उसी प्रकार वेदव्यासजीके किये हुए 'नाभाव उपलब्धेः' इत्यादि सूत्रोंके व्याख्यानके व्याजसे अपने कहे हुए ब्राह्मण आदिवर्ण ब्रह्मचर्यआदि श्रम इत्यादि जगत् मिथ्या (ज्ञानातिरिक्त कुछ नहीं है) इत्यादि अद्वैतमतका खंडन करके सज्जनोंको भ्रमसे बचाया। ऐसी वस्तुस्थिति रहते हुए भी तामसिक अधिकारियोंको मोहित करनेके अभिप्रायसे लिखे हुए ऊपरके वाक्योंसे ब्राह्मणादिवर्ण ब्रह्मचर्यादि आश्रम, यज्ञादि क्रिया, देवता, वेद, गंगादितीर्थ, स्वर्गादि परलोक देवमंदिरस्थापन, देवतापूजा, पुण्यपाप, मन्त्र, जातिभेद, गुरुशिष्य, बंधमुक्ति, इत्यादि सनातनधर्मके मूलसिद्धान्तोंकी अवहेलना प्रतिभासित होती है और उन्हीं वाक्योंको लेकर आजकल सुधारकगण जनताको सनातनधर्मके विरुद्ध भड़काते हैं तथा श्रीशंकराचार्यके उन्हीं वाक्योंके आधारपर मूर्तिपूजाका खंडन वर्णाश्रमधर्मकी निर्मूलता इत्यादि अपने मतको सिद्ध करना चाहते हैं। इसी प्रकार इन्हीं ऊपरके वाक्योंका आधार लेकर इस समयके नास्तिकगण श्रीशंकराचार्यजीके मत पर आक्षेप करते हैं कि, अद्वैतवादी हमलोगोंसे भी कट्टर नास्तिक हैं, क्योंकि नास्तिक लोग तो स्वर्ग नरक पुण्य पाप और देवगण आदि अप्रत्यक्ष वस्तुमात्रको मिथ्या

मानते हुए भी प्रत्यक्ष प्रमाण मानकर प्रत्यक्षसिद्ध जो जगत् है, उसका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। परन्तु अद्वैतवादी लोग स्वर्ग नरक, पुण्य-पाप आदि अप्रत्यक्ष वस्तुको तथा प्रत्यक्ष-सिद्ध जगत्को भी मिथ्या कहते हैं। ईश्वरके सम्बन्धमें भी अद्वैत-वादी अनीश्वरवादियोंके समान ईश्वरकी सच्ची सत्ता भी नहीं मानते हैं, श्रुतियोंका भी प्रामाण्य मिथ्या है, ऐसा कहते हैं। नास्तिक ईश्वर और वेदको एकदम नहीं मानते और अद्वैतवादी लोग उसमें थोड़े व्याजके साथ नमकमर्च लगाकर नहीं मानते, जैसा कि, किसीको मिथ्या पण्डित कहना या अपण्डित कहना तात्पर्य दोनोंका एक ही है, इसी प्रकार वेदोंको अप्रमाण कहना या मिथ्या प्रमाण कहन इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। ईश्वरके विषयमें भी ईश्वरको काल्प-निक सत्य कहना अथवा ईश्वरको नहीं मानना ये दोनों बराबर हैं। विशेषता यही है कि, हमलोग तो जिनको मानते नहीं हैं उनको करते भी नहीं हैं परन्तु अद्वैतवादी लोग स्वर्ग नरक पुण्य-पाप वर्णाश्रमाचार और देवता आदिको मिथ्या मानकर भी लोकवंचना के लिये उनका अनुष्ठान करते हैं, ऐसा आक्षेप नास्तिक लोग करते हैं और नास्तिकगण श्रीशंकराचर्यजीको महान् नास्तिक मानकर अपने संघका गुरु या अग्रगण्य बनाना चाहते हैं। श्रीशंकराचार्यका यथार्थ अभिप्राय न समझकर 'अद्वैतमतविमर्श'के खंडनका साहस करनेवाले श्रीशास्त्रीजी श्रीशंकराचार्य पर मिथ्यात्ववाद (विवर्त-वाद) का कलंक लगाते हुये उनको नास्तिकोंके गढ़ेमें ढकेलनेका प्रयत्न कर रहे हैं और उनके साथ अपनेको भी उसी ओर लिये जारहे हैं। किंतु यदि कोई शंकराचार्यके ऊपर लगे हुए मायावाद (जगन्मिथ्यात्ववाद) का कलंक धोकर उनको वैदिक सनातन-धर्मियोंके धर्माचार्यपदपर प्रतिष्ठित करनेका प्रयत्न करे तो दोनोंमें किसका पुरुषार्थ प्रशंसनीय होगा, यह हर एक साधारण व्यक्ति भी समझ सकता है। अब विचार करना यह है कि, श्रीशंकराचार्य

तथा वेदोंको आक्षेपसे बचाना या नहीं? और उनको बचाकर वैदिक सनातनधर्मकी रक्षा करना या नहीं? इसलिये 'अद्वैतमत-विमर्श'के रचयिता महानुभावने उस ग्रन्थमें यह सिद्ध किया है कि, श्रीशंकराचार्यने परमार्थतः वर्णाश्रमधर्म, परलोक, देवता, संध्या-पूजन, पुण्य-पाप, वेद, यज्ञ, गंगादितीर्थ आदि जगत्को सत्य (अकल्पित) माना है। केवल तामसिक अधिकारियोंको मोहित करनेके लिये मायाबाद (विवर्तवाद) का झलक दिखलाया है। अब यह कहना अनुचित न होगा कि, 'अद्वैतमतविमर्श' ग्रंथके प्रकाशनका अभिप्राय श्रीशंकराचार्यका यथार्थ अभिप्राय बतलाकर आदर बढ़ाना है उनपर आक्षेप करना नहीं है।

यदि शंकराचार्यजीका अभिप्राय यह हो कि, वर्णाश्रमधर्म इत्यादि सब मिथ्या है तो सनातनधर्मियोंकी श्रद्धा श्रीशंकराचार्यमें नहीं रह जायगी, इसलिये इस ग्रंथका प्रकाशन तथा साम्प्रदायिक विवाद सामयिक, अत्यावश्यक और सर्वथा उचित है।

अन्तमें शास्त्रीजीसे वक्तव्य यह है कि, आपको उचित और कर्तव्य है कि, आप पहिले 'अद्वैतमतविमर्श' पुस्तक तथा उसमें उल्लिखित अद्वैतग्रन्थके वचनोंको आद्यन्त मनोयोग लगाकर भली-भाँति पढ़ें और उसका पूर्ण विचार करके समुचित उत्तर लिखें तब श्रीस्वामीजीकी इच्छा पूर्ण होगी, अभी तो आपने बिना समझे बुझे कुछ लिख मारा है, ग्रन्थका तो स्पर्श तक नहीं किया है, यह बात 'अद्वैतमतविमर्श' और आपके लिखे हुए ग्रन्थके देखनेसे प्रत्येक बुद्धिमान्को विदित हो जायगी।

हां, आपने लेखबद्ध शास्त्रार्थ आरम्भ किया है, यह संतोषकी बात है।

भारतधर्म प्रेस, काशी।

श्रीसर्वेश्वरो विजयते।

अद्वैतमत तथा बौद्धमत का भेदखण्डन।

बौद्धों में मुख्यतः दो भेद हैं। एक शून्यवादी बौद्ध तथा दूसरे विज्ञानवादी बौद्ध। उनमें शून्यबादी बौद्धों तथा अद्वैतवादियों की समता (एकता) दिखाते हैं।

यह सर्वसंमत ही है कि स्वीकृत तत्त्वों के भेद से ही सिद्धान्तों में भेद होता है। अद्वैत तथा शून्यवादी बौद्ध, इन दोनों मतों में प्रमाण, प्रमेय, फल, पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक, देवता, वेद, गङ्गा आदि तीर्थ, ये सब कल्पित = मिथ्या = तीनों कालों में न रहनेवाले (न पूर्वकाल में थे, न अभी हैं, न आने होंगे) ऐसे माने गये हैं। इससे अध्यस्त (आरोपित) विषय में तो किसी प्रकार का भी भेद दोनों मतों में नहीं है। अब रही अधिष्ठान की बात, सो उसमें भी विचार करने से भेद नहीं है, यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। क्योंकि बौद्धों का शून्य तथा अद्वैतियों का ब्रह्म, निर्विशेष तथा अद्वय होने के कारण दोनों एक ही हैं, उनमें भेद नहीं है।

भट्टाचार्यजीने अपनी खंडन-पुस्तक में लिखा है कि—

"शून्यवादी माध्यमिक बौद्ध के मत से भी शङ्करमत भिन्न है। शून्यवादी शून्य को सत्, असत्, सदसत्, सदसदनुभयरूप—इस चार कोटि से अलग मानते हैं—

न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्।
चतुष्कोटिविनिर्म्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका जगुः॥

[शिवार्कमणिदीपिका २।२।३०]

"माध्यमिकास्तावदुत्तमप्रज्ञा इत्थमचीकथन् × × ×
अतस्तत्त्वं सदसदुभयानुभयात्मकचतुष्कोटिविनिर्मुक्तं शून्यमेव।"

[सर्वदर्शनसंग्रह बौद्धदर्शन]

अद्वैत मत में ब्रह्म सत्स्वरूप है, तथा ज्ञानस्वरूप है। शून्यवादी शून्य को सत्स्वरूप नहीं मानते हैं, यदि सत्स्वरूप शून्य होता तो सत्कोटि में आ जाता, उक्त चतुष्कोटिविनिर्मुक्त नहीं हो सकता। शून्य को सत् मानने पर शून्यवादी के अपसिद्धान्त की आपत्ति होती है। इसलिये अद्वैतवादी का ज्ञानस्वरूप ब्रह्म माध्यमिक का शून्य नहीं है। शून्यवादी शून्य को ज्ञानस्वरूप मानते हैं, ऐसा श्रीस्वामीजी नहीं कह सकते। ऐसा कहने से उनके कथनानुसार (अद्वैतमतविमर्श १७ पृ., १८ पृ.) विज्ञानवादी तथा शून्यवादी का मत एक हो जायगा। शून्यवादी लोग विज्ञान को पारमार्थिक तत्त्व नहीं समझते हैं—

नेष्टं तदपि धीराणां विज्ञानं पारमार्थिकम्।
एकानेकस्वभावेन विरोधाद्वियदब्जवत्॥

[शिवार्कमणिदीपिका २।२।३०]

"अतो न विज्ञानमेव तत्त्वमिति व्यवस्थापयितुं शक्यम्।"

[अवैदिकदर्शनसंग्रह (वाणीविलासप्रेस) १७पृ.]

अद्वैतवादी नित्यविज्ञान को ही पारमार्थिक तत्त्व मानते हैं। इसलिये अद्वैतमत शून्यमत से अलग है।"

भट्टाचार्यजीके उपर्युक्त वाक्यों को देखकर खेद के साथ कहना पड़ता है कि श्रीमान् भट्टाचार्यजी गौडपादाचार्य तथा श्रीशंकराचार्यजीके ग्रंथों से परिचित नहीं हैं, क्योंकि गौडपादाचार्यजीने-

अस्ति नास्त्यस्ति नास्तीति नास्ति नास्तीति वा पुनः ।
चलस्थिरोभयाभावैरावृणोत्येव बालिशः ॥ ८३ ॥
कोट्यश्चतस्र एतास्तु ग्रहैर्यासां सदावृतः ।
भगवानाभिरस्पृष्टो येन दृष्टः स सर्वदृक् ॥ ८४ ॥

इन कारिकाओं में ब्रह्म चतुष्कोटिविनिर्मुक्त है, ऐसा लिखा है।

तथा श्रीशंकराचार्यजी ने—

"यः स भगवान् आभिः अस्ति नास्तीत्यादिकोटिभिः चतसृभिरप्यस्पृष्टो अस्त्यादिविकल्पनावर्जितः इत्येतत् येन मुनिना दृष्टो ज्ञातः वेदांतेषु औपनिषदः पुरुषः स सर्वदृक् सर्वज्ञः परमार्थ पंडित इत्यर्थः ॥ ८४ ॥

दुर्दर्शमतिगंभीरम् ॥ १०० ॥

'दुर्दर्श' अस्ति नास्तीति चतुष्कोटिवर्जितत्वात् दुर्विज्ञेयमित्यर्थः।

(गौ. शां. भा.) ॥१००॥

न सच्चाहं न चासच्च नोभयं केवलः शिवः ॥

(पद्यप्रबंधः)

इत्यादि अनेक वाक्यों से ब्रह्म को भी शून्य के समान सत् नहीं असत् नहीं सदसत् नहीं इत्यादि चतुष्कोटिविनिर्मुक्त कहा है और जो लोग ब्रह्म को चतुष्कोटिविनिर्मुक्त मानते हैं, वे ही परमार्थ पंडित (सच्चे विद्वान्) हैं। जो नहीं मानते, वे बालिश (अविवेकी = मूर्ख) हैं। ऐसा भी उक्त ग्रन्थ में लिखा है। तो अब भट्टाचार्यजी ही बतलावें कि वे ब्रह्म को चतुष्कोटिविनिर्मुक्त मानते हैं या नहीं ? यदि ब्रह्म को सत् मानकर चतुष्कोटिविनिर्मुक्त नहीं मानते तो बेचारे शून्यवादियों पर लदनेवाला अपसिद्धांत का

बोझा भट्टाचार्यजी के ही माथे पड़ता है। यदि वह बोझा बाजू पटक कर अपने पूर्वाचार्यों का सम्मान रखने जाते हैं तो शून्य-वादियों की पंगत में बैठना पड़ता है। इसलिये 'अद्वैत मत में ब्रह्म सद्रूप है और बौद्धों के मत से शून्य सद्रूप नहीं है' इत्यादि भट्टाचार्यजी का कथन उचित नहीं मालूम होता। उपर्युक्त कथन से यह भी सिद्ध होजाता है कि "सत्यज्ञानमनन्तं ब्रह्म" यह श्रुति अद्वैतियों के चतुष्कोटिविनिर्मुक्त ब्रह्म का वर्णन नहीं करती।

श्रीमान् भट्टाचार्यजी ने अद्वैतियों की ओर से वकालत की है कि ब्रह्म और शून्य एक नहीं है; परंतु अद्वैत सिद्धांत के प्रवर्तक श्रीशंकराचार्य ने अपने 'सर्ववेदान्तसिद्धांतसंग्रह' ग्रंथ में शून्य और ब्रह्म को एक रूप ही माना है। जैसा कि—

जीवन्मुक्तिपदं हित्वा स्वदेहे कालसात्कृते।
विशत्यदेहमुक्तित्वं पवनोऽस्पंदतामिव॥
ततस्तत्संबभूवासौ यद्गिरामप्यगोचरम्।
यच्छून्यवादिनां शून्यं ब्रह्म ब्रह्मविदां च यत्॥
विज्ञानं विज्ञानविदां·········तत्तत्त्वं तदसौ स्थितः॥

भावार्थ—जब ज्ञानी का शरीर कालकवलित हो जाता है और वह जीवन्मुक्त्यवस्था को छोड़ देता है, जैसे वायु स्थिर हो जाय, इसी प्रकार विदेह मुक्तिपद में प्रवेश करता है। तदनंतर वह योगी जो वाणी से अगोचर है, जो शून्यवादियों का शून्य है, जो ब्रह्म-वादियों का ब्रह्म है और विज्ञानवादियों का विज्ञान है उसी स्वरूप को पा जाता है। इससे स्पष्ट हो गया कि शून्य और ब्रह्म का स्वरूप एक ही है, जिसको मुक्त प्राप्त करता है। आशा है कि भट्टाचार्यजी अब आगे शून्य और ब्रह्म में एकता स्वीकार करके अद्वैतियों के पक्ष की वकालत न करेंगे।

बौद्धोंने अपने शून्य का ज्ञानरूपत्व भी स्वीकार किया है। यह निम्न लिखित वाक्यों से निश्चित हो जायगा। वे वाक्य ये हैं—

चतुःप्रस्थानिका बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः···॥
······आकारसहिता बुद्धिर्योगाचारस्य सम्मता ॥
केवलां संविदं स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमाः पुनः ॥

(विवेकविलासे ८।२७३)

शून्यवादी माध्यमिक लोग अपने शून्य की ज्ञानरूपता मानते है।

गंभीरोत्तानभेदेन क्वचिच्चोभयलक्षणा।
भिन्ना हि देशनाऽभिन्ना शून्यताऽद्वयलक्षणा ॥

(बोधिचित्तविवरणे)

अद्वैतसिद्धिकारने अपने ग्रन्थ में—

" शून्यवादिभिरपि सत्त्वरहितज्ञानानंदात्मकत्वस्य ब्रह्मणोऽन्यत्रांगीकारात्" इति।

इस वाक्य से तथा लघुचन्द्रिकाकारके—

" शून्यवादस्य विज्ञानवादविशेषरूपत्वात् "

इस वाक्य से पुष्टीकरण भी किया है। पहिले प्रदर्शित किये हुए शंकराचार्य के—

"यच्छून्यवादिनां शून्यं ब्रह्म ब्रह्मविदां च यत्। विज्ञानं विज्ञानविदां····"

इत्यादि वाक्यों से भी शून्य ज्ञानरूप है ऐसा सिद्ध होता है। यदि इस प्रकार शून्य की ज्ञानरूपता मानी है, ऐसा सिद्ध होता है तब 'शून्यवादी शून्य को ज्ञानरूप मानते हैं' ऐसा श्रीस्वामीजी कहें तो क्या हर्ज है? कुछ भी नहीं। 'शून्यवादी शून्य की ज्ञानरूपता मानते हैं' ऐसा स्वीकार कर भट्टाचार्यजी को अपने प्राचीन आ-

चार्यों का तो सम्मान अवश्य करना चाहिये। ज्ञानरूप शून्य तथा ज्ञानरूप ब्रह्म एक होने से अद्वैतवाद तथा शून्यवाद एकही है।

'सजातीय विजातीयों से (शून्य विज्ञान इत्यादि से) भेद-शून्य हमारा ब्रह्म है।' ऐसा कहनेवाले अद्वैती लोग शून्य विज्ञान प्रतियोगिक भेद अपने ब्रह्म में कैसे मान सकते हैं? किसी प्रकार से भी नहीं। यदि भट्टाचार्यजी शून्य विज्ञान प्रतियोगिक भेद ब्रह्म में स्वीकार करेंगे तो उनके पीछे अपसिद्धांतरूपिणी पिशाची अवश्य लगेगी। हां! इसी लिये भट्टाचार्यजी ने भी अपने ब्रह्म में सजातीय विजातीय (शून्य विज्ञान इत्यादि) प्रतियोगिक भेद निषेध द्वारा 'अद्वैतमतविमर्श' में कहे हुए ब्रह्म और शून्य इन दोनों में भेद नहीं है। ऐसे पक्ष का समर्थन करके आपने हमारी ही सहानुभूति दिखलाई है। इसके लिए तो भट्टाचार्यजी को धन्य-वाद ही देना चाहिए।

एक बात और है जिसपर ख़ासकर विद्वानों को ध्यान देना चाहिये। वह यह कि ब्रह्मसूत्रपर भाष्य करते हुए शंकराचार्यजीने यह शंका की है कि सूत्रकारने सूत्रों में शून्यवादी मत का खंडन क्यों नहीं किया? इसके समाधान में शंकराचार्यजीके लिखे हुए—

"शून्यवादिपक्षस्तु सर्वप्रमाणविप्रतिषिद्ध इति तन्निराक-रणाय नादरः क्रियते" इति

(शां० भा० २। २।३१)

इसी भाष्य से तथा इस भाष्य के—

"शून्यपदेन सर्वं प्रपंचातीतं भावरूपं किंचित् तत्त्वं विवक्षि-तम् उत अभावरूपम्। नाद्यः तथा सति वाचोयुक्त्यंतरेण ब्रह्म-वाद एवाश्रितः। यदि द्वितीयः पक्षः तदा सर्वप्रमाणविरोधः।

सर्वप्रमाणैः प्रपंचे उपलभ्यमाने तदभाव एव तत्वमिति निरूपयितु-मशक्यमिति दूषणस्य स्फुटतया तन्निराकरणाय न सूत्रकृता सूत्रा-ण्यारचितानि।"

इस ब्रह्मविद्याभरण नामक व्याख्या के देखने से यह प्रतीत होता है कि शून्यवादी शून्यको भाव रूप मानें चाहे प्रपंचाभाव रूप मानें, दोनों पक्ष में अद्वैत मत तथा शून्य मत एकही होता है।

यदि शून्यवादो को भाव रूप मानें तो "वाचोयुक्त्यन्तरेण ब्रह्म-वाद एवाश्रितः" भिन्न शब्द से ब्रह्मवाद ही स्वीकार किया है याने शून्यवाद तथा ब्रह्मवाद एक ही होता है।

यदि शून्य प्रपंचाभावरूप मानें तो भी 'अद्वैतमतविमर्श' में कहे हुए अद्वैतियों के वचनों से तथा भट्टाचार्यजी के उद्धृत किये हुए—

'ब्रह्मैवाद्वैताभावेत्यङ्गीक्रियते'

इत्यादि अद्वैतियों के वचनों से भी अद्वैत ब्रह्म प्रपंचाभावरूप होने के कारण शून्यवादियों का प्रपंचाभावरूप शून्य तथा अद्वैतियों का प्रपंचाभाव रूप ब्रह्म एकही होता है। अतएव शून्यवाद तथा ब्रह्म-वाद का अभेद ही सिद्ध होता है।

ब्रह्मविद्याभरण ग्रन्थ को ऊपर-ऊपर देखने से ऐसा भासमान होता है कि शून्यवादियों का शून्य प्रपंचाभावरूप होने के कारण अद्वैत ब्रह्म से अलग है। परन्तु भट्टाचार्यजी ने प्राचीन आचार्यों के वचन उद्धृत कर ब्रह्म प्रपंचाभावरूप है ऐसा सिद्धकरके प्रपंचा-भावरूप ब्रह्म तथा प्रपंचाभाव रूप शून्य एक ही है इस लिये बौध (शून्य) मत तथा अद्वैत मत एक है ऐसे 'अद्वैत विमर्श' में कहे हुए तथा अपने घोषणापत्र में १०००) मुद्रा पारितोषिक रखे हुए पक्ष का समर्थन ही किया है।

शायद १०००) मुद्रा पारितोषिक दूसरा कोई न छीन ले इसी

से भट्टाचार्यजीने ऐसा लिखा होगा, परंतु कुछ भी हो पहिले तो अद्वैतविमर्शकारने ही लोगों में यह बात प्रसिद्ध की है। इस लिये उसी को १०००) मुद्रा मिलनी चाहिये। हां, पुष्टीकरण करनेवाले भट्टाचार्यजी को भी कुछ भाग अवश्य मिलना चाहिये।

——❀o❀——

बौद्धों का विज्ञानवाद तथा अद्वैतियों का विज्ञानवाद ये दोनों एक हैं।

विज्ञानवादी बौद्धों का विज्ञानवाद—

विज्ञान एक सत्य है, उस विज्ञान में समस्त जगत् कल्पित है।

अद्वैतियों का विज्ञानवाद—

विज्ञान एक सत्य है, उस विज्ञान में समस्त जगत् कल्पित है।

इस प्रकार अध्यस्त (आरोपित) जगत् के विषय में तथा अधिष्ठान विज्ञान के विषय में एकता होने के कारण बौद्धों का विज्ञानवाद तथा अद्वैतियों का विज्ञानवाद एक ही सिद्ध होता है। इसका विशेष विचार 'अद्वैतमतविमर्श' में स्पष्ट है, देखने से ज्ञात होगा। श्रीमान् भट्टाचार्यजी ने अपनी खंडन—पुस्तक में लिखा है कि—

"बौद्ध विज्ञान को अनित्य मानता है; श्रीशङ्कराचार्य्य नित्य मानते हैं। बौद्ध ज्ञान को नाना मानता है; श्रीशङ्कराचार्य्य एक मानते हैं।

तत्त्वसंग्रह में ३३२— ३३५ तक विज्ञान के एकत्व का खण्डन किया है। इसलिये विज्ञानवादी बौद्धमत के विवरण में ज्ञान एक सच्ची नित्य वस्तु है (अद्वैतमतविमर्श ३ पृ०, १७ पृ०, १८ पृ०) कहना अशुद्ध है।"

ऐसा लिखने से विदित हो जाता है कि भट्टाचार्यजी ने 'अद्वैत मतविमर्श' ग्रन्थ को नहीं देखा है। यदि भली भाँति देखे होते तो १६ वें पृष्ठ पर उनकी शंका तथा १७ सत्रहवें पृष्ठ पर उसका समाधान भी श्रीभट्टाचार्यजी को मिलजाता और उनके व्यर्थ परिश्रम तथा समय की बचत भी होती। अब भी यदि भट्टाचार्यजी उक्त ग्रंथ को एक बार पढ़लें तो उनकी शंका का समाधान हो जाय।

श्रीमान् भट्टाचार्यजी ने खंडनपुस्तक में बौद्धविज्ञान तथा अद्वैतियों के विज्ञान में भेद बताते हुये लिखा है कि—

"श्रीशङ्कराचार्य्य 'एकमेवाद्वितीयम्' (छा० ६।२।१) 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' (बृ० ३।९।२८) सत्यं 'ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै० २।१) इत्यादि श्रुति प्रमाण तथा युक्ति से ज्ञानस्वरूप ब्रह्म को एक मानते हैं, उस ब्रह्म को सजातीय भेद, विजातीय भेद तथा स्वगत भेद से रहित मानते है (पञ्चदशी २।२०—२५)। बौद्ध विज्ञान को भिन्न भिन्न मानते हैं, इसलिये बौद्धमत में विज्ञान में सजातीय भेद अवश्य होता है।"

यह भट्टाचार्यजी का लेख देखने से श्रीमान् भट्टाचार्य जी को खंडन के तार में हम क्या लिख रहे हैं तथा इससे क्या सिद्ध होगा इत्यादि कुछ भी स्मरण रहा नहीं ऐसा दीखता है क्योंकि यदि ऐसा न होता तो बौद्धों के विज्ञान से अद्वैतियों का विज्ञान भिन्न है ऐसा प्रदर्शित करते समय अद्वैतियों का विज्ञान सजातीय विजातीय भेद रहित है ऐसा कभी न कहते, क्योंकि ऐसा कहने से भेद तो सिद्ध होता ही नहीं किन्तु 'सजातीय विजातीयों से (शून्य विज्ञान इत्यादिकों से) भेद निषिद्ध होता है, ऐसा भेद निषेध करते हुये भी यदि भट्टाचार्यजी भेद समर्थन का प्रयत्न करेंगे तो स्वव्याहति रूप पिशाची उनका पीछा कभी भी न छोड़ेगी।

यही विषय "अद्वैतमतविमर्श" नामक ग्रंथ में विस्तार से कहा है, जिज्ञासु लोगों को अवश्य देखना चाहिये।

पूर्वोक्त श्रीशङ्कराचार्य जी के—

यच्छून्यवादिनां शून्यं ब्रह्म ब्रह्मविदां च यत् ।
विज्ञानं विज्ञानविदां........तत्तत्त्वं तदसौ स्थितः ॥

इन वाक्यों से बौद्धविज्ञान तथा अद्वैत ब्रह्मविज्ञान में भेद नहीं है ऐसा सिद्ध होता है।

ऐसा अधिष्ठान रूप परमार्थतत्त्व के विषय में बौद्धमत तथा अद्वैत मतकी एकता सिद्ध होगयी।

अध्यस्त विषय में भी इन दोनों मतों की एकता है ऐसा श्रीशंकराचार्यजीने-

यद्यपि बाह्यार्थनिराकरणं ज्ञानमात्रकल्पना च अद्वयवस्तुसामीप्यमुक्तं

इत्यादि वाक्यों से कहा है और भट्टाचार्यजीने भी "अद्वैतमत में ब्रह्मसाक्षात्कार के अनन्तर व्यावहारिक प्रपञ्च को बाधित माना गया; उससे पूर्व समस्त प्रमाणप्रमेयफलव्यवहार को सत्य माना गयाः—

"सर्वव्यवहाराणामेव प्राग् ब्रह्मात्मताविज्ञानात्सत्यत्वोपपत्तेः स्वाप्नव्यवहारस्येव प्राक् प्रबोधात् । यावद्धि न सत्यात्मैकत्वप्रतिपत्तिस्तावत्प्रमाणप्रमेयफललक्षणेषु विकारेषु अनृतत्वबुद्धिर्न कस्यचिदुत्पद्यते । × × । तस्मात्प्राग् ब्रह्मात्मताप्रतिबोधादुपपन्नः सर्वो लौकिको वैदिकश्च व्यवहारः ।"

[शाङ्करभाष्य २।१।१४]

अध्यस्त विषय में साम्य का उपपादन और विवर्तवाद की प्रशंसा करके हमारा कार्य कर दिया है, परंतु वह जगन्मिथ्यात्व सर्व प्रमाणविरुद्ध है प्रत्युत जगत्सत्यत्व श्रुतिसिद्ध है इस विषय का अब विचार करेंगे।

२/३४